पूज्य ललचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन नंबर: LA ३३७
श्री नियांसार गाथा ४९ और कलश ७४
देवलाली, महारस्त्र, ता . ??-११ -१९८७ Version 1

श्री नियमसारजी परमागम शास्त्र है। इसका शुद्धभाव अधिकार यानि शुद्ध आत्मा का अधिकार, गाथा ५० चलती है। इसमें हेय तत्त्व क्या है और उपादेय तत्त्व क्या है? उसकी उत्कृष्ट में उत्कृष्ट भेदज्ञान की गाथा है।

जैसे ३८ गाथा में, अधिकार शुरू करते हुए, सात तत्त्वों के समूह को बहिर्तत्त्व कहकर परद्रव्य कहा और अन्तःतत्त्व शुद्धात्मा को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। ऐसे यहाँ ५० गाथा में चार विभाव भाव जो प्रगट होते हैं वे परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, आत्मा से भिन्न हैं इसलिए वे उपादेय नहीं, हेय हैं और उन चार भावों से रहित शुद्धात्मा एक ही उपादेय है इसप्रकार हेय और उपादेय के स्वरूप का कथन यहाँ किया गया है, उसमें इस गाथा का पूर्वार्ध हुआ।

अभी उत्तरार्ध थोड़ा बाकी है। पूर्वार्ध में ऐसा कहा कि जितनी विभावगुणपर्यायें हैं, वे पूर्व में व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप कही गई थी। यानि विभाव पर्याय हैं- उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि भाव 'हैं' सही। और वे 'हैं' इसलिए जानने योग्य हैं और जानने की अपेक्षा से उपादेय हैं ऐसे शब्दों का प्रयोग करने में आया था **किन्तु**, ऐसा।

किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से अर्थात् अन्तर्मुख दृष्टि से सामान्य स्वभाव का अवलोकन करने पर **वे हेय हैं।** अर्थात् उनका लक्ष होता नहीं, उनका आश्रय होता नहीं। और अभेद में भेद जानने में भी नहीं आता।

वे **किस कारण से** हेय हैं? उसका कारण बतलाते हैं। **क्योंकि वे** अर्थात् सभी विभावगुणपर्यायें **परस्वभाव हैं**। परस्वभाव इसलिए कहा क्योंकि जो शुद्धात्मा का लक्षण परमपारिणामिक भाव है, ऐसा लक्षण इन किसी भी चार भावों में नहीं है।

किसी का लक्षण उदय भाव, किसी का उपशम, किसी का क्षयोपशम, किसी का क्षायिक, ये पर्याय हैं। इनसे रहित द्रव्य स्वभाव है उसका लक्षण परमपारिणामिक भाव है। चारों भाव कर्म सापेक्ष हैं और भगवान आत्मा कर्म से निरपेक्ष है। चारों भाव अनित्य और अध्रुव हैं और भगवान आत्मा नित्य और ध्रुव है। इसलिए यह शुद्धात्मा उपादेय है, कोई भी पर्याय उपादेय नहीं है।

किस कारण से वे उपादेय नहीं हैं? किस कारण हेय हैं? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं,** परभाव हैं । आत्मा के स्वभाव भाव से विरुद्ध भाव को परभाव कहने में आता है। आत्मा नित्य शुद्ध है और ये परिणाम अनित्य और शुद्धाशुद्ध हैं। इसलिए हेय हैं और परस्वभाव हैं। और परस्वभाव होने के कारण **इसीलिये** वे **परद्रव्य हैं।** और परद्रव्य हैं इसलिए हेय हैं।

हेय का कारण बतलाया। परस्वभाव हैं, परस्वभाव होने से परद्रव्य हैं और परद्रव्य उपादेय

नहीं है। अर्थात् परद्रव्य में आत्मबुद्धि करने योग्य नहीं है। परद्रव्य में आत्मा नहीं है। आत्मा आत्मा में है और परिणाम परिणाम में है। परिणाम में आत्मा नहीं है और आत्मा में परिणाम नहीं है। इसलिए वह परद्रव्य है, इसलिए वह हेय है।

अब, हेय की बात तो की, फिर उसके सामने उपादेय तत्त्व क्या है ? - यह कहना चाहिये। मूल में पहले हेय की बात की है। अन्वयार्थ में - **पूर्वोक्त सर्व भाव पर स्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं।** हेय का कारण बतलाया था। **पर स्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये** वे **हेय हैं** इसप्रकार कारण दिया था। इतनी डेढ़ पंक्ति की टीका हुई ।

अब उपादेय जो मूल में है। **अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य---आत्मा** , स्वद्रव्य यानि आत्मा। एक परद्रव्य और एक स्वद्रव्य। परद्रव्य के भेद - संख्यात, असंख्यात और अनंत - भेद हैं परद्रव्य के। और स्वद्रव्य अभेद एक है। स्वद्रव्य में अनेकपना नहीं है। शुद्धात्मा एक ही है। शुद्धात्मा में दो प्रकार नहीं हैं। परद्रव्य तो अनंत हैं। परिणाम मात्र अनंत पर्याय। अनन्तगुणों की अनंत पर्याय परद्रव्य (हैं)। कर्म रजकण अनंत परद्रव्य। पुद्गल-परमाणु अनंतानंत पुद्गल वे परद्रव्य (हैं)। अनंत दूसरे जीव वे परद्रव्य। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये सभी परद्रव्य हैं। तब स्वद्रव्य क्या है?

कि अन्तःतत्त्व अंदर में रहा हुआ। वह बहिर्तत्त्व और यह अन्तःतत्त्व। **ऐसा स्वद्रव्य--** , स्वद्रव्य का अर्थ किया **आत्मा** । स्वद्रव्य यानि क्या? आत्मा। **उपादेय है।** इतनी जो आखरी पंक्ति है, उसकी टीका अब आती है।

अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य-- यानि **आत्मा उपादेय है।** इसका विस्तार आता है। **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित**, यहाँ से शुरुआत की। शुद्धात्मा जो है वह परिणाममात्र से भिन्न, परिणाममात्र से रहित है। शुद्ध आत्मा भिन्न है और परिणाम भिन्न हैं। परिणाम में आत्मा नहीं है और आत्मा में परिणाम नहीं हैं।

कहते हैं **सर्व** शब्द का प्रयोग किया **विभावगुणपर्यायों** विशेष गुण की पर्यायें जो प्रगट होती हैं, वे प्रगट होती हैं। जो प्रगट होती हैं वे प्रगट से भिन्न हैं। प्रकट है वह द्रव्य है। और प्रकट होते हैं वो उसके परिणाम प्रकट होते हैं। प्रकट है उससे जो प्रकट होता है वह भिन्न है।

सोना प्रकट है और सोने के परिणाम - घाट (डिज़ाइन) प्रकट होते हैं, वे सोने से भिन्न हैं, सोना नहीं हैं। कहने में तो सोना आता है, वह कथनमात्र है। वह सोना नहीं है। सोना तो जो प्रकट है, है-है-है-है अनादि अनंत सोना उसे स्व कहते हैं। और ये (पर्यायें) तो प्रकट होकर नाश होती हैं, प्रकट होकर नाश होती हैं, ऐसा।

सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित । जो प्रकट होती हैं, पर्यायें, उनसे भगवान आत्मा जो उपादेय तत्व कहना है वह रहित है। परिणाममात्र से आत्मा भिन्न-रहित है, व्यतिरिक्त है। ऐसा जो **शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप** अन्तःतत्त्व की व्याख्या करते हैं। उसमें कहा अन्तःतत्त्व। उस अन्तःतत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा कि जो बहिर्तत्त्व है उससे रहित होने से अन्तःतत्त्व है। विभावगुण पर्यायें बहिर्तत्त्व हैं और उनसे जो रहित होता है वह अन्तःतत्त्व है। उनसे रहित तीनो काल है।

बंध-मोक्ष के परिणाम से रहित, नौ तत्वों से रहित , प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित, सुख-दुःख के

परिणाम से रहित, राग से रहित, इन्द्रिय ज्ञान से रहित, श्रुतज्ञान से रहित, केवलज्ञान से रहित, मोक्ष से रहित, आहाहा ! ऐसा जो **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित** अनादि अनंत रहित है। एक समय भी सहित नहीं होता।

(यदि) एक समय भी पर्याय से सहित द्रव्य हो जाये, तो दूसरे समय द्रव्य का नाश हो जाये। रहित ही है और रहित रहनेवाला है, अनादि अनंत। निगोद में भी परिणाम से रहित रहा है और सिद्ध भगवान की पर्याय जो प्रकट हुई, उससे भी आत्मा रहित रहा है और अनंतकाल रहित रहनेवाला है। सिद्ध पर्याय से आत्मा तीनों काल रहित रहेगा।

जो पर्याय से रहित रहे वह उपादेय है। आहाहा! पर्यायमात्र हेय है। **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित** आहाहा! इस सहित का शल्य वह संसार (है) और रहित का ज्ञान वह मोक्ष का मार्ग (है)।

सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। लो, ये स्वद्रव्य की व्याख्या की। अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य। स्वद्रव्य किसको कहते हैं? कि परिणाममात्र से रहित उसे शुद्धात्मा स्वद्रव्य, निजद्रव्य कहने में आता है। **शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** स्वद्रव्य उपादेय है यानि आत्मा उपादेय है। आत्मा कैसा है? परिणाममात्र से भिन्न है।

परिणाममात्र से रहित है। इसलिए आत्मा परिणाम का कर्ता-भोक्ता नहीं है। परिणाम का कर्ता-भोक्ता क्यों नहीं है? क्योंकि वो परिणाम स्वयं परद्रव्य है। जैसे इस (क्लिप) पदार्थ का कर्ता-भोक्ता आत्मा नहीं है, ऐसे ही अध्यात्म की पराकाष्ठा में उत्पन्न हुए जो परिणाम, उनका आत्मा कर्ता-भोक्ता नहीं है। क्योंकि आत्मा परिणाम से भिन्न है और परिणाम आत्मा से भिन्न हैं। अतः दोनों के बीच कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है। आहाहा! और जहाँ व्याप्य-व्यापक, कर्ता-कर्म (संबंध) कहा हो, वहाँ (उसे) व्यवहार समझना चाहिए। और दृष्टि प्राप्त करने के लिए वो व्यवहार भी अभूतार्थ और असत्यार्थ है ऐसा जानना।

स्वद्रव्य उपादेय है। **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध- अन्तस्तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** अब, जो स्वद्रव्य उपादेय है तो उस स्वद्रव्य में क्या है? उनमें विभावरूप पर्यायें थी चार में, तो स्वद्रव्य में कुछ तो होगा ना? कोई खाली नहीं है। पर्याय से रहित है, तो सहित किससे है?

एकत्व-विभक्त की बात करते हैं। अनन्तगुणों से एकपना है और अनंत पर्यायों से विभक्त नाम भिन्नपना है आत्मा का। यह भेदज्ञान की पराकाष्ठा चलती है। पराकाष्ठा में एक स्वद्रव्य और अन्य सब परद्रव्य। आहाहा ! एक शुद्धात्मा स्वद्रव्य, बाकी मुझसे भिन्न छह द्रव्य परद्रव्य, मुझसे भिन्न पंचपरमेष्ठी परद्रव्य, चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान परद्रव्य, आठ कर्म परद्रव्य, शरीर परद्रव्य, आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम के भेद भी परद्रव्य हैं। स्वद्रव्य नहीं हैं। आहाहा!

अब यह **स्वद्रव्य उपादेय है** इसकी व्याख्या करते हैं. हेय की व्याख्या हो गई। अब उपादेय की व्याख्या करते हैं। उपादेय तत्त्व यानि क्या? **वास्तव में सहजज्ञान,** यानि सहज गुण, ज्ञान नाम का आत्मा में एक त्रिकाली गुण है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना।

अब देखो, आत्मा का स्वभाव क्या है? कि ज्ञान। ज्ञान आत्मा का गुण है। आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है। सोना है वह गुणी है और चिकनाई, पीलापन उसके गुण हैं और वह घाट से रहित

है। आहाहा! गुण की पर्याय , गुण की पर्याय, वह गुण की पर्याय, पर्याय से गुण रहित। जिसकी पर्याय है उस पर्याय से गुण रहित है। यानि कि वह गुण की पर्याय ही नहीं है, वह परद्रव्य है। आहाहा! अब पर्याय को भूल जा तू । कि द्रव्य की पर्याय और गुण की पर्याय और अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय - ये थोड़ी देर के लिए भूल जा, वो परद्रव्य है। आहाहा! पर्याय को जानेगा तो उसमें ममता रहेगी। पर्याय को जानेगा तो उसमें कर्ता-भोक्ता की भ्रान्ति रह जाएगी। और परद्रव्य कहने पर सारी भ्रान्ति मिट जाएगी।

उपादेय तत्त्व कैसा है ? वास्तव में आत्मा उपादेय है। उपादेय यानि आश्रय करने योग्य, अहं करने योग्य। आहाहा! आत्मा के साथ स्वस्वामी संबंध जोड़ने योग्य। वह वास्तव में सहज ज्ञान यानि ज्ञान नाम का गुण - उसका परमपारिणामिक लक्षण नित्य निरावरण और परिपूर्ण। ज्ञान गुण, परमपारिणामिक लक्षण वाला गुण, परिपूर्ण और नित्य निरावरण ऐसा ज्ञान नाम का आत्मा में गुण है। आहाहा! आत्मा में पर्याय नहीं है। गुण है और गुण की पर्याय नहीं है। आत्मा में ज्ञान गुण तो है। परन्तु ज्ञान गुण की क्रम से पांच पर्याय होती हैं, वे आत्मा में नहीं हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान ये पांच प्रकार की सम्यक्ज्ञान की पर्याय ज्ञान गुण में नहीं हैं। गुण की पर्यायें गुण में नहीं हैं।

मुमुक्षुः- गुण की पर्यायें कहना और गुण में नहीं हैं?

उत्तरः- गुण की पर्याय कहना और गुण में नहीं हैं! गुण में नहीं हैं अतः वे गुण नहीं हैं परन्तु वे परद्रव्य हैं। आहाहा! सहजज्ञान आत्मा में यह त्रिकाली गुण है।

दूसरा दर्शनगुण आत्मा में है। दर्शनगुण आत्मा में है परन्तु वह अपरिणामी है। परिणमता नहीं है। यदि परिणमे तो चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि और केवलदर्शन उपयोग दिखाई दे। लेकिन वह तो अनादि अनंत अपरिणामी, कूटस्थ और निष्क्रिय है। आहाहा! परिणाम से अब गुण को मत देखो। द्रव्य को परिणामी से मत देखो। परिणाम से मत देखो और 'परिणामी है'- ऐसा मत देखो। अपरिणामी देखो। और गुण को भी, परिणाम होते हैं ऐसा मत देखो। गुण परिणमता है ऐसा मत देखो । गुण है ऐसा देखो। आहाहा ! अद्भुत है बात! ५० वीं गाथा यानि शीर्ष (की गाथा)। आहाहा!

यहाँ शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अधिकार पूरा होता है ५० गाथा में। ३८ गाथा से शुरू होकर ५० में निश्चयनय का विषय पूरा होने के बाद ५१ से व्यवहारनय की बात बतायेंगे।

'**सहजज्ञान**' यह आत्मा का एक त्रिकाली सामान्य गुण , नित्य निरावरण , परिपूर्ण शुद्ध है। आहाहा ! वह ज्ञान गुण परिणमता नहीं है। आहाहा ! ज्ञानगुण कूटस्थ है। ज्ञानगुण निष्क्रिय है। गुण के परिणाम नहीं होते। परिणाम कहते ही गुण नजर में नहीं आयेगा, पर्याय नजर में आएगी। गुण को देखना हो तो गुण की पर्याय को मत देखो तो गुण दिखेगा। गुण की पर्याय को देखोगे तो गुण जानने में नहीं आयेगा। और गुण जानने में नहीं आयेगा तो गुणी भी जानने में नहीं आयेगा। आहाहा ! सहज ज्ञान, सहज दर्शन गुण है।

सहज चारित्र आत्मा का एक त्रिकाली गुण है। आहाहा ! उस चारित्र नाम के गुण के यथाख्यात चारित्ररूप परिणाम नहीं होते हैं। वह परिणाम, परिणाम से होता है, गुण से नहीं। चारित्र गुण की पर्याय को चारित्र गुण का आधार नहीं है। ज्ञान गुण की पर्याय को उस गुण का आधार नहीं है।

इसलिए गुणी ऐसे द्रव्य के आधार से पर्याय होती नहीं है।

दर्शन गुण, उसका केवलदर्शन उपयोग, उसका आधार गुण नहीं है और गुणी भी नहीं है। आधार-आधेय संबंध का अभाव है। पर्याय का आधार पर्याय है परन्तु पर्याय का आधार गुण भी नहीं है और पर्याय का आधार गुणी भी नहीं है। क्योंकि व्यतिरिक्त अर्थात् भिन्न है। एकदम पराकाष्ठा है भेदज्ञान की, स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग की।

चारित्र नाम का गुण त्रिकाल, नित्य शुद्ध, नित्य निरावरण। इस गुण का चारित्र मोहनीय के साथ संबंध हुआ नहीं है और किसी भी काल में होने वाला भी नहीं है। चारित्र गुण को पर्याय नहीं होती। गुण की पर्याय देखोगे तो गुण नजर में नहीं आयेगा। और गुण को भेद से देखोगे तो गुणी नजर में नहीं आयेगा। पर्याय को देखोगे, चारित्र गुण की पर्याय, स्वरूपाचरण चारित्र की (देखोगे), तो गुण हाथ में नहीं आयेगा। और गुण को देखोगे तो गुणी हाथ में नहीं आयेगा। भगवान अभेद आत्मा में पर्याय भी नहीं है और गुण-भेद होने पर भी दिखाई नहीं देता। अभेद में भेद दिखाई नहीं देता।

मुमुक्षु: गुणभेद ?

उत्तर: गुणभेद दिखाई नहीं देता। गुण हैं। पर्याय नहीं है और गुण हैं, परन्तु गुणभेद नहीं है। फिर से. पर्यायें तो हैं ही नहीं द्रव्य में, वे तो व्यतिरिक्त हैं परन्तु सहज ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण हैं। गुण हैं परन्तु गुण भेद दिखाई नहीं देता। पर्याय दिखाई दे तो तो परद्रव्य का दर्शन हुआ। और गुण-भेद दिखाई दे तो भी परद्रव्य है वो। गुणी में गुण का भेद करना उसे परद्रव्य कहने में आया है। कहाँ कहा है? २५२ (कलश) में कहा है। आहाहा! एकदम गाथा टोप मोस्ट (top most) है। आहाहा! सभी प्रकार के व्यवहार के पक्ष छूट जायें, अभेद निश्चय का पक्ष आ जाये और पक्षातिक्रांत होकर अनुभव हो जाये ऐसी गाथा है यह। कहते हैं कि चारित्र गुण। फिर आगे **सहजपरमवीतरागसुखात्मक** आत्मा में सुख नाम का गुण है। उसकी पर्याय नहीं है यानि दुःख नहीं है आत्मा में। और अनाकुल सुख भी आत्मा में नहीं है क्योंकि सुख गुण की पर्याय नहीं है। सुख गुण की पर्याय देखने जाओगे तो सुख गुण ख्याल में नहीं आयेगा। वो परद्रव्य ख्याल में आयेगा। सुख गुण की पर्याय देखने पर, वो पर्याय परद्रव्य है। पर्याय पर - परद्रव्य पर लक्ष करने से विकल्प उत्पन्न होगा। निर्विकल्प अनुभव नहीं होगा। और सुख नाम के गुणभेद पर नजर होगी तो भी वह परद्रव्य के ऊपर लक्ष है। वह स्वद्रव्य के ऊपर लक्ष नहीं है। आहाहा! **शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार** यानि गुणों का आधार, आहाहा! गुणों का आधार गुणी है परन्तु पर्यायों का आधार द्रव्य नहीं है। आधार-आधेय गुण और गुणी के बीच इतना व्यवहार है। भेद रूप। परन्तु परद्रव्य और स्वद्रव्य के बीच व्यवहार से भी आधार-आधेय संबंध नहीं है, और गुण और गुणी के तो व्यवहार से आधार-आधेय संबंध है। सूक्ष्म बात है। कहते हैं- अब आधार की बात करते हैं। कि जो गुण कहे वे किसके आधार से हैं? कि कारणसमयसार ऐसे गुणी परमात्मा के आधार से हैं। तो पर्याय किसके आधार से है? कि पर्याय, पर्याय के आधार से है। पर्याय को द्रव्य का आधार नहीं है। निषेध कर दिया। गुणों को द्रव्य का आधार है। पर्याय को गुणों का या द्रव्य का आधार नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि परद्रव्य है। आहाहा ! और गुण तो व्यवहार से स्वद्रव्य हैं।

फिर से। पर्यायें तो व्यवहार से भी स्वद्रव्य नहीं हैं। और ज्ञान, दर्शन गुण हैं वे व्यवहार से स्वद्रव्य हैं परन्तु निश्चय से वे स्वद्रव्य नहीं हैं। आहाहा! उन्हें व्यवहार क्यों कहा? क्योंकि गुण गुणी के आधार से हैं। परन्तु पर्याय तो द्रव्य के आधार से नहीं हैं। द्रव्य के आधार से होती ही नहीं हैं (पर्यायें)। आधार-आधेय संबंध का अभाव है। आहाहा! परम सत्य है। पर्यायदृष्टि छूट जाती है। ये परिणाम मेरे और मैं परिणाम को करुँ और सम्यग्दर्शन प्रकट करूँ और ध्यान करने बैठ जाऊं और ध्यान प्रकट करूँ, आहाहा! वो परद्रव्य का ध्यान तू कर रहा है। आहाहा ! परद्रव्य से स्वद्रव्य का ध्यान नहीं होगा।

इस स्वद्रव्य यानि स्वगुणों **का आधार** ,गुणों को गुणी का आधार है। सोना है सोना- वह द्रव्य कहलाता है। और उसमें चिकनापन, भारीपन उसके गुण हैं। ये गुण हैं, वे सोने के आधार से हैं, परन्तु जो घाट होता है वह सोने के आधार से नहीं है। उसे आधार-आधेय संबंध का अभाव है। इसलिए कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है। इसलिए परिणाम का आधार परिणाम है।

परिणाम द्रव्य के आधार से नहीं होते। द्रव्य को परिणाम अड़ते नहीं हैं। द्रव्य को परिणाम स्पर्शते नहीं हैं। क्योंकि परद्रव्य हैं। परिणाम यदि कहोगे तो कथंचित् आयेगा परन्तु परद्रव्य कहोगे तो हो गया, दृष्टि का विषय पक्का हाथ में आ जायेगा। दृष्टि के विषय बिना निर्विकल्प आत्मा का अनुभव, किसी काल में, कभी भी किसी जीव को नहीं हो सकता। इसलिए ४५ वर्षों तक जो दृष्टि के विषय को घूँटा है वह यथार्थ है। आहाहा!

गुण हैं उन्हें तो द्रव्य का आधार है परन्तु पर्याय को किसका आधार है? कि पर्याय सत् अहेतुक होने से उसे किसी के साथ आधार-आधेय संबंध नहीं है। क्योंकि अनित्य को, अनित्य को नित्य का आधार नहीं होता। नित्य अनित्य को आधार नहीं देता। नित्य और अनित्य दोनों सत् अलग अलग हैं, इसलिये पर्याय पर्याय के आधार से होती हैं, मेरे आधार से पर्याय नहीं होती। (मुझे और पर्याय को) आधार-आधेय संबंध नहीं है, इसलिये कर्ता संबंध नहीं है, भोक्ता संबंध भी नहीं है। आहाहा! और परद्रव्य और स्वद्रव्य के ज्ञाता-ज्ञेय(संबंध) कहना वो व्यवहार है। और स्वद्रव्य वो स्व और स्वद्रव्य का स्वामी मैं, ये निश्चय है। और स्वद्रव्य जानने में आता है। स्वद्रव्य जानता है। स्वद्रव्य जानता है और स्वद्रव्य जानने में आता है। पर्याय जानने में नहीं आती। क्योंकि पर्याय परद्रव्य है। आहाहा! स्वद्रव्य के ऊपर लक्ष जाते ही परद्रव्य के ऊपर से लक्ष छूट जाता है। परद्रव्य अर्थात् पर्याय। ओहोहो ! क्या माल भरा है इसमें! हे ग्रंथाधिराज ! तुझमें ब्रह्मांड के भाव भरे हैं।

जिसे केवली भगवान भी पूरा नहीं कह सके.
तह स्वरूप, अन्य वाणी उसे कैसे कहे?
अनुभवगोचरमात्र रहा वह ज्ञान जो।.

(२०, अपूर्व अवसर, श्रीमद राजचन्द्र)

ऐसे भाव, इसमें भंडार भरा है बापू! आहाहा! गणधर भगवान कहते हैं, केवली परमात्मा को- अरे! कहाँ तेरा केवलज्ञान और कहाँ हमारा अल्प, समुद्र में बिंदु ज्ञान। आहाहा! तू कहकर, तू कहकर बुलाते हैं गणधर भगवान भी, आहाहा! कहाँ तेरा केवलज्ञान, तुम्हारा नहीं! कहाँ तेरा केवलज्ञान और कहाँ हमारा अल्प ज्ञान। आहाहा ! ये भक्ति की मस्ती में होता है। भक्ति की मस्ती में भगवान को भी तू

कहकर भक्त बुलाते हैं। हे प्रभु ! कहाँ तेरा ज्ञान! और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! तुम तो समुद्र हो और समुद्र में मेरा तो बिंदुमात्र, क्षयोपशम ज्ञान है। छद्मस्थ का क्षयोपशम ज्ञान होता है और केवली का केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान अलग आहाहा! परिपूर्ण और यह तो अल्प। कहते हैं कि भाव तेरे में ब्रह्मांड के भरे हैं।

पर्याय को द्रव्य का आधार नहीं है। तो गुणों को किसका आधार है? कि स्वद्रव्य का आधार है। जब पर्याय से व्यतिरिक्त नाम रहित कहा आत्मा को तो फिर आत्मा शून्य है, खाली है या कुछ उसमें है? कि माल भरा हुआ है। आहाहा! मालामाल है अंदर। आहाहा! अनंत गुण का पिंड भगवान आत्मा। एक एक गुण परिपूर्ण सामर्थ्य से भरा हुआ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, प्रभुत्व, विभुत्व शक्ति आहाहा! ऐसा एक एक गुण, ऐसे गुण, उन गुणों को परमपारिणामिक जिसका लक्षण ऐसा कारण समयसार आधार है। आधार-आधेय के भेद को व्यवहार कहने में आता है। और द्रव्य और पर्याय का भेद कहना, उसे स्वद्रव्य और परद्रव्य कहने में आता है। आहाहा! क्योंकि परिणाम स्वयं परद्रव्य है। परद्रव्य, स्वद्रव्य के आधार से नहीं होता और स्वद्रव्य, परद्रव्य के आधार से नहीं होता। आत्मा परिणाम के आधार से नहीं है। और परिणाम आत्मा के आधार से नहीं है। आधार-आधेय संबंध का परिणाम के साथ अभाव है। और जहाँ शास्त्र में आधार-आधेय कहा हो, वहाँ समझ लेना कि वह व्यवहारनय का कथन है। अतः श्रद्धा की अपेक्षा से वह अभूतार्थ है ऐसा जान लेना। ज्ञान की अपेक्षा से भूतार्थ और श्रद्धा की अपेक्षा से अभूतार्थ, व्यवहार से भूतार्थ और निश्चय से अभूतार्थ है ऐसा जानना। आयेगा आधार-आधेय, कर्ता-कर्म भी आयेगा। निराश होने की जरूरत नहीं है।

आहाहा! जो नयों का ज्ञाता हो गया और निश्चयनय- नयों का अधिपति आ गया हाथ में, वह व्यवहारनय के कथन से निराश नहीं होता। जान लेता है कि यह व्यवहारनय का कथन है।

इस स्वद्रव्य का आधार , गुणों का आधार, (इसका) बहुत लम्बे समय बाद गुरुदेव ने खुलासा किया। इस स्वद्रव्य का आधार, स्वद्रव्य का आधार क्यों? फिर खुद कहा कि हे भगवान! लाज रखना आज। बहुत सभा इकट्ठी हो गई है। तुझे जो अंदर में हो कहने का, वो आज कह देना, लाज रखना हमारी प्रभु! इसका मुझे समाधान देना, कि स्वद्रव्य यानि क्या तुम कहना चाहते हो ? वो जहाँ वांचन शुरू हुआ और पंक्ति आयी `कि स्वद्रव्य यानि गुण, वे गुणी के आधार से रहते हैं'। इसमें तालियों की गड़गड़ाहट हो गई। आहाहा!

लाज रखना भक्त की प्रभु! (उन्होंने) खुद की आत्मा को कहा, हों! इस भगवान को कहा कि जैसा है वैसा तू आज (कह देना)। आहाहा! अंदर का भगवान जागा और कहा कि यह स्वद्रव्य यानि गुण अर्थ करना। आहाहा ! सभी शिष्यों को, भक्तों को भी इसका (अर्थ) समझने की जिज्ञासा रहती थी।

इस स्वद्रव्य का आधार अर्थात् इन गुणों का आधार **सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है।** कारणसमयसार के आधार से कार्यसमयसार नहीं है। कारणसमयसार के आधार से गुणरूप कारण तो हैं, परन्तु पर्यायरूप कार्य उसमें नहीं है। आहाहा! क्या ये तो कोई गाथा है!

मुमुक्षुः- गुणरूप कारण।

उत्तरः- गुणरूप कारण हैं परन्तु पर्यायरूप कार्य उसमें नहीं है। आहाहा! गुण भेद हैं किन्तु उसमें पर्याय के भेद नहीं हैं। आहाहा! गुण है वो व्यवहार है और गुणी है वो निश्चय है। और पर्याय है वो परद्रव्य है। क्या कहा? पर्यायें परद्रव्य हैं, गुण है वो व्यवहार स्वद्रव्य है और गुणी है वह निश्चय स्वद्रव्य है। आहाहा! गुण और गुणी, इतना व्यवहार लो। श्रद्धा के विषय के लिए बात चल रही है, हों! दृष्टि के विषय में, दृष्टि के विषय से जीव का लक्षण क्या? कि उपयोग? कि नहीं। दृष्टि के विषय में लक्षण शुद्ध उपयोग? कि नहीं। दृष्टि के विषय में ज्ञान गुण वो लक्षण? तो कहते हैं, हाँ। परमपारिणामिक लक्षण? तो कहते हैं, हाँ। परन्तु उपयोग और शुद्धोपयोग- ये दृष्टि के विषय के लक्षण नहीं हैं। (ये) प्रमाण ज्ञान के (लक्षण हैं), पदार्थ के लक्षण हैं। आहाहा! बहुत गहराई की बात है।

यह उपादेय तत्त्व, इसका लक्षण क्या? कि उपयोग तो क्रमिक है, अनित्य है, नाशवान है, ये इसका लक्षण (नहीं है)। और शुद्धोपयोग भी समयवर्ती है। समयवर्ती त्रिकाली का लक्षण नहीं होता। तो त्रिकाली का लक्षण त्रिकाली। ये त्रिकाली का लक्षण त्रिकाली कौन? कि सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजसुख, ये गुण। गुण ये लक्षण और आत्मा लक्ष्य।

ऐसा लक्ष्य-लक्षण का भेद है। परमपारिणामिक भाव वो लक्षण और आत्मा लक्ष्य। ऐसे भाव और भाववान, गुण और गुणी ऐसे भेद का व्यवहार आओ तो आओ। अभेद में तो ये भेद भी फिर दिखता नहीं है। आहाहा! ७ वीं गाथा में कहा आत्मा में ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है परन्तु जब विचार करने में आता है तो ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं, चारित्र भी नहीं। आहाहा! बोलो तो वह गाथा क्या है?

चारित्र, दर्शन, ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानी के ।
चारित्र नहीं, दर्शन नहीं, नहीं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है ।।७।।

(समयसार गाथा ७)

यह वही। आहाहा! गुणी का लक्षण गुण है। ये भी व्यवहार है, भाई ! यहाँ अटकना नहीं है। आहाहा! ज्ञान वह आत्मा, (ये) व्यवहार हुआ। दर्शन वह आत्मा, व्यवहार हो गया। क्योंकि एक गुण जितना द्रव्य नहीं है। अनंत गुणों का पिंड उसको आत्मद्रव्य कहते हैं। आहाहा! गाथा बहुत ऊंची है। हे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा! तेरे कहे हुए तत्त्व में जैसे जैसे मैं गहराई से दृष्टि (नजर) डालता हूँ अंदर में , वैसे वैसे मेरे स्वरूप का चमत्कार मुझे भासित होता है। ऐसा मेरा आत्मा है ऐसा मुझे भासित होने लगता है, ऐसा। ऐसा मैं हूँ, आहाहा! ऐसा मुझे भासित होता है। यह स्वद्रव्य का आधार! पर्यायों का आधार नहीं। आहाहा! द्रव्य को पर्याय का आधार नहीं है। गुण को द्रव्य का आधार है परन्तु द्रव्य को गुण का आधार नहीं है। गुण को तो द्रव्य का आधार है परन्तु द्रव्य को गुण का आधार नहीं है। भेद को अभेद का आधार है परन्तु अभेद को भेद का आधार नहीं है। तो परद्रव्य का आधार तो कहाँ से हो?

प्रभु! सुनो बात, आहाहा! यह तेरे घर की बात! अंदर में माल भरा है! भावजीभाई बेचारे चले गये। क्योंकि हेय की बात आयी, परन्तु (अब) उपादेय की बात चलती है यह। यह उपादेय की बात चलती है। इम्पोर्टेन्ट (important) है। हेय की बात तो नास्ति से थी, लेकिन अस्ति में आत्मा कैसा है?

आहाहा! कि आत्मा ऐसा है कि जिसमें सहज ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण हैं। इन गुणों को किसका आधार है? कि गुणी का। ये गुण और गुणी का आधार-आधेय संबंध कहा ये भी अंदर में परद्रव्य हो जाता है। अतः गुण और गुणी अभेद हैं, ऐसा ले। समझाने के लिए भेद करने में आता है, वास्तव में है नहीं। **स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभाव** , आहाहा! एक गुण है ज्ञानगुण, वह क्षयोपशम पर्याय के आधार से नहीं होता। क्योंकि उसका लक्षण नहीं है। परन्तु पारिणामिकभाव के आधार से गुण रहे हुए हैं। आहाहा!

आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (-सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है ऐसा) कारणसमयसार है। परमात्मा। कारणपरमात्मा न लिखकर कारणसमयसार लिखा। कारणसमयसार कहो या कारणपरमात्मा कहो, एकार्थ वाचक हैं। आहाहा! कार्यसमयसार को, कार्यसमयसार को कारणसमयसार आधार नहीं है। केवलज्ञान का आधार कारणसमयसार नहीं है। परन्तु सहज ज्ञानगुण है वो आत्मा के आधार से है। यह आत्मा पर्याय के आधार से नहीं है और आत्मा गुण के आधार से नहीं है। और पर्याय को द्रव्य का आधार नहीं है परन्तु गुण को तो द्रव्य का आधार है। आहाहा! इतना आधार-आधेय का व्यवहार सविकल्प में आये तो रखना बाकी दूर तक जाना मत।

आहाहा! पर्याय को मैं करता हूँ और मैं जानता हूँ, (ऐसा) रहने देना क्योंकि पर्याय परद्रव्य है। मैं तो **चैतन्य के विलास स्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** गुण भेद तक रुक जाना। पर्याय के भेद में लंबाना मत। आहाहा! इतने में तो निर्विकल्प ध्यान में आ जाता है। गुण भेद आता है और गुण भेद छूट जाता है।

पर्याय का भेद तो दिखता नहीं है क्योंकि परद्रव्य है, वो आत्मा में नहीं है। आत्मा में गुण हैं परन्तु आत्मा में पर्याय नहीं है। बहुत ऊँचे प्रकार की बात है। आहाहा! यह चने के आटे का, सच्चे घी का मैसूर नहीं है। यह तो बादाम के मैसूर की बात चलती है। आहाहा! बादाम का मैसूर तो प्रीतिभोज में कहीं और कभी ही होता है। आहाहा! प्रफुल्ला बहन नहीं आये? उनके गांव में वो लड्डू होते हैं, करणशाही लड्डू। करणशाही लड्डू यानि दो सो रुपये का किलो। वह लड्डू खोलो तो बादाम दिखे, पिस्ता दिखे, इलायची दिखे लेकिन आटा नहीं दिखता। इतना तो भरपूर मसाला। उन्हें करणशाही लड्डू कहते हैं। आहाहा! श्रीमंत के यहाँ शादी हो तो ये करणशाही लड्डू बनाते हैं। परन्तु अब श्रीमंत की शादी हो तो (भी) बादाम का मैसूर कोई बनाता नहीं है। आहाहा! यह तो बादाम के मैसूर की बात चलती है। प्रभु! सुन, पर्याय का लक्ष छोड़ दे। पर्याय मेरे में है ये पक्ष छोड़ दे। आहाहा! अरे! तेरे में गुणभेद नहीं है प्रभु! मैं तो गुणी अभेद सामान्य हूँ, (ऐसा) ले न। आहाहा!

इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है। यह उपादेय तत्त्व की व्याख्या चली। उपादेय कहा ना? आत्मा, आत्मा को उपादेय है। तो उपादेय है (वो) विभावगुणपर्याय से रहित ऐसा शुद्धात्मा उपादेय कहा। तो उपादेय में है क्या? कि सहज ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं, पर्याय नहीं है उसमें। और गुण और गुणी का भेद करे तो व्यवहार है। उसमें साध्य की सिद्धि नहीं है। सीधे गुणी के ऊपर आजा। गुण का भेद करके, उसको उल्लंघकर (गुणी के ऊपर आजा।) आहाहा! छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनिराज पर्याय का स्मरण नहीं करते, द्रव्य का

स्मरण करते हैं और द्रव्य का स्मरण करने पर गुणभेद उठता है, फिर वापस अभेद में चले जाते हैं। आहाहा! विस्तृत होकर पर्याय तक उपयोग नहीं जाता है (ऐसी) कोई अद्‌भुत बात है।

अब आचार्य भगवान ऐसा कहते हैं कि जैसे ३८ गाथा में मैंने परद्रव्य कहा, परिणाममात्र को। ५० वीं गाथा में कुंदकुंद भगवान ने स्वयं परिणाममात्र को परद्रव्य कहा। अर्थात् मैं और कुन्दकुन्दाचार्य भगवान, दो आचार्य तो, एक आचार्य और एक मुनिराज, दो तो परद्रव्य कहते हैं। परन्तु अमृतचंद्राचार्य (परद्रव्य) कहते हैं? कि हाँ, उन्होंने भी परिणाममात्र को परद्रव्य कहा है। उसका समयसार का १८५ गाथा का आधार देते हैं।

समयसार में पर्याय को परद्रव्य कहा है या नियमसार में कहा है, परन्तु अन्य कहीं (कहा है)? कि हाँ, है। कि कुन्दकुन्द भगवान ने कहा है या टीकाकार ने कहा है? दोनों टीकाकारों ने कहा है। मात्र कुंदकुंदाचार्य भगवान ने (ही) कहा है ऐसा नहीं है, परन्तु उसके दो समर्थ आचार्य टीकाकार हुए, उन्होंने भी कहा और ये टीकाकार स्वयं भावी तीर्थंकर हैं। तीन आचार्य भगवानों ने कहा - परद्रव्य। और इसका विस्तार करनेवाले एक भावी तीर्थंकर सूर्यकीर्ति होने वाले हैं। आहाहा! धातकी खंड के महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर होनेवाले हैं, हैं और हैं। कोई मानो या कोई ना मानो। ये बहनश्री का जातिस्मरणज्ञान सौ प्रतिशत सच्चा है। आहाहा! एक पैसे भर की भी इसमें भूल नहीं है। शंका करने जैसी नहीं है। ये तो श्रद्धा का विषय है। कोई मानो या कोई ना मानो। परन्तु सूर्यकीर्ति होनेवाले हैं धातकीखंड के महाविदेह क्षेत्र (में)। जम्बूद्वीप का महाविदेह, धातकीखण्ड का महाविदेह और पुष्करद्वीप का महाविदेह। अभी चार तीर्थंकर जम्बूद्वीप के महाविदेह में, आठ अभी विराजमान हैं धातकीखण्ड में और आठ अर्ध पुष्करद्वीप में - अभी बीस तीर्थंकर विराजमान हैं। सीमंधर भगवान आदि नाम-ठाम सभी शास्त्रों में है अभी तो, पूजा में भी है। आहाहा!

मुमुक्षु:- सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु।

उत्तर:- ये चार और अन्य (सोलह) आहाहा! उसमें छठ्ठे स्वयंप्रभ हैं। बोलो! ये नाम याद रह गया। आहाहा! ऐसे बीस तीर्थंकर विराजमान हैं। छट्ठी गाथा का लेख। आहाहा!

१८५ श्लोक में आचार्य भगवान कहते हैं कि वह परद्रव्य है, ध्यान रखना। परद्रव्य उपादेय नहीं होता भाई! परद्रव्य को परद्रव्य तरीके से जान। बस! स्वद्रव्य को स्वद्रव्य तरीके से जान। (तो) कोई दोष नहीं है। १८५ वाँ श्लोक तो कण्ठस्थ है बहन को, बोलो। सिद्धांन्तो आहाहा! (वीडियो रिकॉर्डिंग - video recording) सही होता है? होता है?

मुमुक्षु:- हाँ जी! बहुत सुंदर।

उत्तर:- तो ठीक है। यह है ना ये मुद्दे की बात है इसलिये। दुबारा तो मौका आये तब आये, फिर वापस बारंबार नहीं आती।

सिद्धांन्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योति: सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥ १८५ ॥

(समयसार कलश १८५)

आहाहा ! हमें प्रकट होते सभी भाव परद्रव्य दिखते हैं। उनमें कहीं हमें हमारा आत्मा देखने में नहीं आता। खोज बहुत की हमने। निश्चय रत्नत्रय के परिणाम प्रकट होते हैं हमें, उनमें हमने गहराई से खोज की, परन्तु हमारा आत्मा कहीं उनमें है नहीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम में तुम्हारा आत्मा नहीं है? बापू! मेरा आत्मा अनित्य नाशवान, आहाहा! कर्म सापेक्ष और पुद्गलद्रव्य उसमें स्वद्रव्य दिखता नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के निर्विकारी परिणाम ऐसे जो भेद, वे परद्रव्य हैं, उनमें स्वद्रव्य की नास्ति है। परद्रव्य में स्वद्रव्य कहाँ से हो? आहाहा!

उसका अर्थ - **जिनके चित्त का चरित्र** आहाहा! यानि आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम को चारित्र कहते हैं। **जिनके चित्त का चरित्र** यानि ज्ञान का चारित्र **उदात्त** यानि **(उदार, उच्च, उज्ज्वल)** - शुद्ध निर्मल **है ऐसे मोक्षार्थी** आहाहा ! ऐसे साधक धर्मात्मा! मुनिराज धर्मात्माओं को, चौथे, पाँचवे, छट्ठे गुणस्थान में विराजमान साधक आत्माओं को कहते हैं कि **इस सिद्धांत का सेवन करो कि--** , सिद्धांत! **इस सिद्धांत का सेवन करो कि-- `मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ ;'** आहाहा! इस सिद्धांत का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय और एक और परम ज्योति ही सदैव हूँ। आहाहा! **और यह जो भिन्न लक्षणवाले** , मेरे से भिन्न लक्षणवाले, चैतन्य के लक्षण से भिन्न, शुद्ध चैतन्यमय परमपारिणामिक लक्षण से भिन्न **लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव** , व्यवहार रत्नत्रय के भाव और निश्चय रत्नत्रय के भाव, दोनों , वे विविध प्रकार के भाव हैं। वे **भाव प्रकट होते हैं** , उत्पाद-व्यय होते हैं, उत्पाद होता है। वे ध्रुव नहीं हैं। प्रकट है वह मैं हूँ, ध्रुव मैं हूँ, उत्पाद मैं नहीं हूँ। जो प्रकट होता है वो मैं नहीं। क्योंकि जो प्रकट होता है वो नाश हो जाता है और जो प्रकट है वो नाश होता नहीं।

प्रकट होते हैं वह मैं नहीं हूँ, उत्पाद- पर्याय प्रकट होती है वह मैं नहीं हूँ प्रभु ! वह मैं क्यों नहीं हूँ? वे परिणाम प्रकट होते हैं उसमें मेरापना क्यों नहीं है? **क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** आहाहा! जो नाशवान परिणाम हैं, कर्म सापेक्ष हैं, आहाहा! अनित्य हैं, मेरे लक्षण के साथ मिलते नहीं हैं, आहाहा! सम्यग्दर्शन मेरे लक्षण के साथ मिलता नहीं है। क्योंकि सम्यग्दर्शन का लक्षण उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। मेरा लक्षण परमपारिणामिकभाव है। लक्षण भेद से भेद है अर्थात् पदार्थ भेद से भेद है। इसलिये स्वद्रव्य नहीं, परद्रव्य है। आहाहा!

क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं। आहाहा! मुझे तो परद्रव्य रूप से जानने में आते हैं। किन्तु स्वद्रव्य रूप से जानने में नहीं आते। परन्तु प्रभु! निश्चय मोक्षमार्ग? उसके साथ स्वस्वामी संबंध? कि नहीं है। परद्रव्य के साथ स्वस्वामी संबंध नहीं होता। आहाहा! यदि हो जाये, एक समय मात्र के लिए यदि हो जाये, आहाहा! तो मोक्षमार्ग का अभाव हो जाये। स्वस्वामी संबंध नहीं है इसलिये मोक्षमार्ग टिकता है। और स्वस्वामी संबंध नहीं है इसलिये मोक्ष हो जाता है। आहाहा! **वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** देखो, यह एक कलश हुआ। अब एक कलश लेना है यह। इसलिये (प्रवचन) समाप्त नहीं करते हैं। यह एक कलश ले लेना है क्योंकि यह कलश बहुत ऊंचा आता है।

५० गाथा के ऊपर एक अमृतचंद्राचार्य का कलश स्वयं रखा आधार के तौर पर। अब ५०

गाथा के ऊपर स्वयं एक कलश बनाते हैं। स्वयं का स्वतंत्र कलश। वह अमृतचन्द्र आचार्य का, समयसार का। यह नियमसार टीकाकार स्वयं कलश बनाते हैं। ये कलश बहुत ऊंचा है, एकदम। बोलो बहन!

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-
दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्यं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी
सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्॥ ७४॥

(नियमसार कलश ७४)

श्लोकार्थः- आहाहा! अब यह कुदरती कल जाना है, इसलिये निश्चयनय का विषय पूरा होता है और व्यवहारनय का विषय लेना था परन्तु टाइम नहीं है इसलिये लिया नहीं जा सकता। किसी को ऐसा लगे कि यह अकेले निश्चय की बात की और व्यवहार की बात एक तरफ रख दी, तो ऐसा नहीं है प्रभु! हम कल तो जाने वाले हैं, यदि यहाँ रुकते तो यह व्यवहार की बात भी ले लेने वाले थे, छोड़ने वाले नहीं थे। परन्तु प्रभु! क्या करें, हमारे भाग में, हमारे भाग में और भाग्य में निश्चय की बात स्थापने की आयी है, क्या करें प्रभु!

मुमुक्षु :-आपका अवतार ही इसलिये हुआ है।

मुमुक्षुः- एक एक बात में बहुत मर्म है।

उत्तरः- मर्म है। ऐसा नहीं है, मैं रुकता तो यह लेने ही वाला था, कंटीन्यू में (continue)। प्रश्न ही कहाँ था? ये तो कुदरती, आहा! कुदरती ऐसा बनाव बना। उसमें हम क्या करें?

श्लोकार्थः- 'शुद्ध जीवास्तिकाय से , आहाहा! अस्तिकाय, बहु प्रदेशी आत्मा एक प्रदेशी नहीं है, अनंत प्रदेशी नहीं है, असंख्यात प्रदेशी है। एक प्रदेश से अधिक प्रदेश वाले पदार्थ होते हैं उनको अस्तिकाय कहने में आता है। जीव को अस्तिकाय कहते हैं। धर्मास्तिकाय को अस्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाश, ये चार पदार्थ अस्तिकाय रूप हैं। और पुद्गल है वो उपचार से अस्तिकाय - बहुप्रदेशी है एक परमाणु लो तो एक प्रदेशी है और काल द्रव्य भी एक प्रदेशी है। बहु प्रदेशी चार हैं। उन चार में जीव बहु प्रदेशी है इसलिये उसे जीवास्तिकाय, जीव और अस्तिकाय - बहु प्रदेशी (है), इसलिये उसे अस्तिकाय विशेषण दिया जाता है। और अनादि-अनंत शुद्ध है इसलिये 'शुद्ध' विशेषण कहा।

'शुद्ध जीवास्तिकाय से अर्थात् शुद्ध आत्मा से अर्थात् मेरे आत्मा से, **अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव** जो प्रकट होते हैं, व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम हों या निश्चय रत्नत्रय के परिणाम हों, **वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'**। आहाहा! जो नाश होते हैं उनके साथ वास्तव में स्वस्वामी संबंध नहीं है। ज्ञायक मेरा स्व और मैं उसका स्वामी। ऐसा स्व-स्वामी संबंध का व्यवहार हो तो हो। निश्चय में तो यह व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! तो ये **पुद्गलद्रव्य के** जो भाव प्रकट होते हैं अन्य **भाव वे वास्तव में हमारे नहीं हैं** । हमारा स्वामीपना उनमें नहीं है। आहाहा! हम उनके कर्ता नहीं हैं और भोक्ता भी नहीं हैं।

ऐसा जो तत्त्ववेदी यानि अनुभवी। **ऐसा जो तत्त्ववेदी** यानि आत्मा के स्वरूप का अनुभव करनेवाला, तत्त्ववेदी, ज्ञानी धर्मात्मा। **स्पष्टरूप से कहता है** , स्पष्टरूप से कहता है, **वह अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होता है।** तत्त्ववेदी अनुभवी कहते हैं, जो ऐसा जानेगा कि शुद्धजीवास्तिकाय से जो भिन्न भाव हैं वे सभी पुद्गल द्रव्य के भाव हैं इसलिये वे वास्तव में मेरे भाव नहीं हैं। ऐसा जो जानेगा और मानेगा वह अपूर्व सिद्धि को - मोक्षदशा को पायेगा। ऐसा आशीर्वाद देकर यह निश्चय का अधिकार पूरा किया। आशीर्वाद दिया। अंत में। आहाहा!

ॐ